sankalp1:arunjaity.qxd 9/26/2010 8:38 PM Page 94

# नए अवतार में नानाजी



स्वाधीनता की हमारी लड़ाई केवल राजनीतिक लड़ाई नहीं थी जिसका लक्ष्य राजसत्ता को विदेशी हाथों से छीनकर देशी हाथों को सौंपने तक सीमित हो, अपितु यह दो सभ्यताओं का संघर्ष था, सच्चे अर्थों में एक सांस्कृतिक युद्ध था। भारतीय मनीषा ने इसे सभ्यता की चुनौती के रूप में स्वीकार किया था।

अध्ययन से मुझे यह आवश्यक प्रतीत होता है कि देशवासियों को अपने इस निश्चय से अवगत कराते समय मुझे अपनी उस विचार-प्रक्रिया को भी विस्तारपूर्पक देशवासियों के समक्ष रखना चाहिए जिसने मुझे इस निर्णय पर पहुँचाया है। यह एक प्रकार से मेरे 20 अप्रैल 1978 के सूत्रमय वक्तव्य की व्याख्या मात्र होगी।

आज से 44 वर्ष पूर्व सन् 1934 में एक छात्र के रूप में मेरा जीवन सार्वजनिक कार्य से जुड़ा था। तब देश के वायुमंडल में स्वाधीनता आंदोलन के नारे गूँज रहे थे। भावुक युवा अन्तःकरण में देश की स्वाधीनता के लिए छटपटाहट सर्वव्यापी थी। स्वाधीन भारत के कितने ही उदात्त और आकर्षक सपने उस संघर्षयुग की युवा आँखों में तैर रहे थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के 31 वर्ष पश्चात् जब मैं स्वाधीन भारत के वर्तमान दृश्य पर दृष्टिपात करता हूँ तो मन में सहसा ही यह प्रश्न खड़ा हो जाता है कि क्या स्वाधीन भारत का यही चित्र है जिसका निर्माण करने के लिए देश ने अनेक पीढ़ियों तक स्वाधीनता के लिए लम्बी और विकट लड़ाई लड़ी थी? दयानन्द, विवेकानन्द से लेकर गाँधी तक और तिलक से लेकर नेताजी सुभाष बोस तक महापुरुषों की वह मालिका, जिसने हमारे स्वाधीनता संग्राम का जीवनदर्शन गढ़ा, उसके लिए त्याग और बलिदान की नींव तैयार की और अन्ततः उसे सफलता प्राप्त करा दी, यदि स्वाधीन भारत में एकाएक अवतरित हो जाएं तो आज का दृश्य देखकर उन्हें कैसा लगेगा? इस दृश्य में उन्हें अपने सपनों की पूर्ति दिखेगी अथवा समाधि?

## स्वाधीनता की लड़ाई क्यों?

इन प्रश्नों की भूलभुलैया में उलझकर जब मैं स्वाधीनता आन्दोलन की मूल प्रेरणाओं को टटोलने की कोशिश करता हूँ तो निम्न सूत्र मेरी पकड़ में आते हैं:-

- स्वाधीनता की हमारी लड़ाई केवल राजनीतिक लड़ाई नहीं थी जिसका लक्ष्य राजसत्ता को विदेशी हाथों से छीनकर देशी हाथों को सौंपने तक सीमित हो, अपितु यह दो सभ्यताओं का संघर्ष था, सच्चे अर्थों में एक सांस्कृतिक युद्ध था। भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की स्थापना के साथ ही पश्चिम में उपजी औद्योगिक सभ्यता का भी प्रवेश हुआ था। और उन्नीसवीं शती की भारतीय मनीषा ने इसे सभ्यता की चुनौती के रूप में स्वीकार किया था। स्वाधीनता संग्राम के दार्शनिकों और अग्रणियों ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की थी कि भारत इस औद्योगिक सभ्यता की बाढ़ में प्रवाह पतित के समान कदापि नहीं बहेगा अपितु अपने पूर्वजों द्वारा प्रदत्त श्रेष्ठ जीवनदर्शन, वैज्ञानिक समाज रचना तथा अखंड अनुभव परंपरा के प्रकाश में अपनी मौलिक प्रतिभा से मानवीय मूल्यों पर आधारित तथा विज्ञान के आधुनिक आविष्कारों को ध्यान में रखकर युगानुकूल एक ऐसी नवीन सामाजिक एवं आर्थिक रचना खड़ी करेगा जो शेष विश्व के लिए भी अनुकरणीय बन सके। विवेकानन्द, अरविन्द, तिलक एवं गाँधी आदि मनीषियों ने बार-बार दोहराया था कि नियति द्वारा निर्धारित अपने इस जीवन लक्ष्य की पूर्ति के हेतु ही भारत स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रहा है। अतः भारत की स्वाधीनता केवल उसके अपने हित में नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लिए आवश्यक है।
- स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते हुए भी भारतीय मनीषा भावी समाज रचना के नियामक सिद्धान्तों व आदर्शों की खोज में लगी रही। गरीबी की रेखा के नीचे जी रहे कोटि-कोटि भारतवासियों को जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएँ उपलब्ध कराते हुए उच्चतर जीवन की ओर बढ़ने की सुविधा प्रदान करना। शताब्दियों से चली आ रही सामाजिक और आर्थिक विषमता की खाई को पाटना। आधुनिक विज्ञान द्वारा प्रदत्त शरीर सुख के अनेक नये-नये उपकरणों का उपयोग करते हुए भी "सादा जीवन उच्च विचार" के सनातन आदर्श को सामने रखकर ही व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन स्तर का मापदण्ड निर्धारित करना ओर व्यक्ति के भौतिक व आध्यात्मिक विकास में संतुलन कायम करना।

- धर्म, भाषा, क्षेत्रीयता व जातिवाद के कारण उत्पन्न भेदों को आसेतु हिमाचल सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रति भक्ति की गंगा में डुबोकर एकरस शक्तिशाली राष्ट्र जीवन खड़ा करना।
- एक ऐसी राजनीतिक एवं संवैधानिक रचना को खड़ा करना जो राष्ट्रीय एकता को पुष्ट करने के साथ-साथ प्रत्येक भारतीय को राष्ट्र-निर्माण और राष्ट्र-जीवन के संचालन की प्रक्रिया में सहभागी होने का अवसर प्रदान कर सके।
- **राष्ट्र की नवीन आर्थिक** - सामाजिक व राजनीतिक रचना को प्रतिबिम्बित करने वाले नागरिकों का विकास करने वाली शिक्षाप्रणाली का आविष्कार करना।

किन्तु स्वाधीनता संघर्ष काल के इन प्रेरणासूत्रों के प्रकाश में जब हम स्वाधीन भारत के आज के चित्र पर दृष्टि डालते हैं तो क्या दिखाई देता है? क्या हम उपरोक्त राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति की दिशा में एक पग भी आगे बढ़े हैं? राष्ट्रजीवन के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक आदि किसी भी क्षेत्र में क्या हम अपने राष्ट्रीय आदर्शों के अनुरूप कोई भी मौलिक रचना खड़ी कर पाये हैं? विगत 30 वर्षों में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति के नाम पर जो कुछ हुआ है, उसे पश्चिमी अर्थरचना के अन्धानुकरण के अलावा और क्या कहा जा सकता है? प्रत्यक्ष कृति के क्षेत्र में स्वाधीन भारत द्वारा स्वाधीनता आंदोलन की मूल प्रेरणाओं से इस संबंधविच्छेद का कारण क्या है? क्या स्वाधीन भारत की ये प्रेरणाऐं ही गलत थीं अथवा स्वाधीन भारत उनके प्रति शाब्दिक निष्ठा का बार-बार उद्घोष करते हुए गलत मार्ग पर भटक गया है?



युगानुकूल समाजरचना के आविष्कार का कार्य केवल बौद्धिक व्यायाम द्वारा पूरा होना संभव नहीं है। बनी-बनायी आयातित विचारधाराओं के दायरे में बहस के द्वारा कभी भी नवस्वतंत्र राष्ट्र का नवनिर्माण नहीं हुआ करता। उसके लिए व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामूहिक आचरण के क्षेत्र में लंबे एवं बहुविध प्रयोगों की प्रक्रिया से गुजरना अनिवार्य होता है। प्रत्यक्ष आचरण की प्रयोगशाला की भट्टी में तपकर ही नवनिर्माण का साँचा तैयार हुआ करता है। इसीलिए हम देखते हैं कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ भारत की लड़ाई के दौरान दो धाराऐं साथ-साथ बहती रही हैं। एक राजनीतिक आंदोलन की तो दूसरी रचनात्मक प्रयोगों की। बंगभंग आंदोलन के समय से ही राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में आहार-विहार से लेकर आर्थिक-सामाजिक रचना तक सर्वांगीण राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की दिशा में अनेक प्रयोग प्रारंभ किये गये थे।

वस्तुतः गाँधी जी की दृष्टि में इन रचनात्मक प्रयोगों का स्थान राजनीतिक संघर्ष से कम महत्व का नहीं था। राजसत्ता उनके लिए राष्ट्र निर्माण के अनेक साधनों में से एक साधन थी, सर्वस्व नहीं। अतः राजनीति उनकी गतिविधियों का केन्द्रबिन्दु न होकर एक पूरक अंग मात्र थी।

## सत्ताकेन्द्रित राजनीति का उदय

स्वाधीनताप्राप्ति के पश्चात् सत्ता को ही राष्ट्र निर्माण का एकमात्र साधन मान लिया गया। इसीलिए सत्ताभिमुखी राजनीति संपूर्ण सार्वजनिक जीवन पर छा